आज का निर्णय

-:प्रवचनकार:-

एलाचार्य मुनि वसुनंदी

प्रकाशक:

डी०सी० मीडीया ''निकुंज'' टूण्डला

फिरोजाबाद उ०प्र०

कृतिः

आज का निर्णय

(प्रवचनांश)

शुभाशीषः

प.पू. राष्ट्रसंत, सिद्धांत चक्रवर्ती दि. संत श्वेतपिच्छाचार्य
श्री १०८ विद्यानंद जी मुनिराज

प्रवनकारः

एलाचार्य मुनि वसुनन्दी

सहयोगीः

संघस्थ सभी साधुवृंद एवं त्यागी व्रती

प्रथम संस्करणः **अक्टूबर २०१०**
२१०० प्रतियाँ

मूल्यः **20 रुपये**

प्रकाशकः

डी.सी. मीडीया टूण्डला फिरोजाबाद (उ.प्र.)

मुद्रकः

जैन रत्न सचिन जैन ''निकुंज'' मो० 9058017645

प्राप्ति स्थानः-

श्री सत्यार्थी मीडीया राष्ट्रीय कार्यालय
रविन्द्र भवन इन्द्रा नगर टूण्डला चौराहा
फिरोजाबाद (उत्तर प्रदेश)

(1)

दुष्ट लोग केवल भय के कारण ही सन्मार्ग पर चलते हैं, या फिर इसलिए कि ऐसा करने से उन्हें कुछ लाभ की आशा है।

(2)

श्रम से भरा हुआ पुरुषार्थ और कार्य कुशल सद्‌बुद्धि, इन दोनों की परिपक्वपूर्णता ही परिवार को ऊँचा उठाती है।

(3)

जो पहले अतिथि को जिमाकर, उसके पश्चात् बचे हुए अन्न को स्वयं खाता है, क्या उसे अपने खेत बोने की आवश्यकता होगी?

(4)

पारिजात का पुष्प, सूंघने से मुर्झा जाता है, पर अतिथि का मन तोड़ने के लिए एक दृष्टि (आँख फेर लेना) ही पर्याप्त है।

(5)

धनोपार्जन करना, खेल देखने के लिए आई भीड़ के सदृश है और धन का क्षय उस भीड़ के तितर-बितर हो जाने के समान है।

(6)

याचक के होठों पर संतोषजनित
हंसी की रेखा देखे बिना दानी का
मन प्रसन्न नहीं होता।

(7)

मूर्खता के सब भेदों में सबसे प्रमुख मूर्खता यह
है, कि ऐसे काम में अपने मन को प्रवृत्त करना
जो कि अधम और अयोग्य है।

(8)

जिन लोगों ने अपने प्रतिष्ठित नाम को दूषित
कर डाला है, वे उन बालों की लटों के समान है
जो काट कर फेंकी गयी है।

(9)

जिन व्यक्तियों में शूल को मित्र बना
लेने की कुशलता है, उसकी शक्ति
सदा स्थिर रहती है।

(10)

बार-बार दर्पण देखना नपुंसकता
को निमंत्रण देना है।

(11)

अन्त:करण में जब करुणा उत्पन्न होती
है, तब ना हँसी देखी जाती है और
ना की जाती है।

(12)

मूर्ख दोस्तों के साथ बैठकर
मुस्कराने की अपेक्षा संत के
सामने रोना अच्छा है।

(13)

साधु का जीवन पानी
में पड़ी हुई तेल की
बूंद के समान है।

(14)

शब्दों की शीशी में भावों
को कैद करने से भाव
मृत हो जाते हैं।

(15)

अनुकूलता में विलास जागता
है और प्रतिकूलता में
विवेक जागता है।

(16)
ब्रह्मचर्य का अर्थ है-
स्वयं की ऊर्जा को परमात्मा
सृजन में लगा देना।

(17)
मुस्कराहट के द्वार पर बुढ़ापा दस्तक
नहीं देता इसलिए संसार के सभी
परमात्मा कभी बूढ़े नहीं हुए।

(18)
वियोग की धूप प्रेम के
फल को पकाकर रसदार
बना देती है।

(19)
प्रेम, धर्म और श्रद्धा के क्षणिक
विचार नहीं होते।

(20)
प्रेम आकाश की भाँति निर्मल,
पक्षी की भाँति स्वतंत्र, धरती की तरह
सहिष्णु और माँ की तरह कृपालु है।

(21)
शिल्पी उसी पत्थर पर नजर
डालता है, जो जमीन के
बाहर होते है।

(22)
पक्षी के उड़ान से आकाश पैदा
नहीं होता और न ही उसके विश्राम
से आकाश का लोप।

(23)
अधिकांश लोगों को संत चरणों
में आकांक्षा ही झुकाती है।

(24)
संकीर्णता/स्वार्थ की छोटी-छोटी दीवारें परमात्मा रूपी
आकाश का दर्शन नहीं करने देती।

(25)
पाँचों इन्द्रियों का स्वर एक होगा
तो सम्यक्त्व, सत्य, समता, समाधि,
सम्बोधि का संगीत प्रस्फुटित होगा।

(26)

अंधकार में जन्म लेना बुरा नहीं,
लेकिन अंधकार में प्राण त्यागना बुरा है।

(27)

अत्यधिक अनुशासन से व्यक्ति
की प्रतिभा नष्ट हो जाती है।

(28)

नहीं! नदी का प्रभाव उसकी
ऊँचाई से नहीं बहाव से है।

(29)

अहंकारी व्यक्ति की दशा ध्वजा की तरह
है, जो महत्वाकांक्षा के डण्डे से बंधकर
सम्मान की आकांक्षा से हिलती रहती है।

(30)

भुनभुनाते हुए नहीं,
गुनगुनाते हुए जीयो।

(31)
वेग जितना तीव्र हो, अनुपात
भी उसी अनुसार होना चाहिए।

(32)
बड़े उत्तरदायित्वों का निर्वाह
ईमानदार व्यक्ति ही कर सकता है।

(33)
गरमाहट से की गई बहस में,
गलती कसूर में बदल जाती है
और सच्चाई अशिष्टता में।

(34)
विभाजक दृष्टि ही बुद्धि है,
विवेक है।

(35)
गुरु को जिसमें संतोष होता है,
शिष्य को उसमें आनन्द आता है।

(36)

उलझे मनुष्यों के लिए, सुलझे जानवर
ज्यादा आदर्श बन जाते है।

(37)

स्मरण रखिये:- यदि आप सही है तो
क्रोध करने की जरूरत नहीं। यदि आप
गलत है तो क्रोध करने का आपको अधिकार नहीं।

(38)

यह बात सर्वथा सत्य ही सिद्ध हई है कि
"भोग से नही त्याग से तृप्ति होती है।" आप
भी इसे जाने, मानें तथा अपनी क्रिया में लायें।

(39)

आज तक आपने सदैव अनर्थकारी वस्तुओं
को खोजकर अपना समय एवं अपने जीवन
का मूल्य नष्ट किया है, अब आप ऐसे ईश्वर
को खोजो जो चरित्र बनकर साथ-साथ रह सके।

(40)

अनेक महान् आचार्यों, भगवंतों, संतों ने
इस बात की पुष्टि की है, कि- युक्ति के
अनुभव के लिए बंधन का अनुभव जरूरी है।

(41)

उन शब्दों को भी आचार्यों ने धन्य
माना है, जिन शब्दों से जीव को जागृत
होने की प्रेरणा मिलती है।

(42)

अपने शरीर को स्वस्थ एवं निरोगी रखना
चाहते हो तो, आचार्यों ने ध्यान को औषधि
तथा समाधि को स्वास्थ्य लाभ बताया है।

(43)

आज तक तुमने अपने जीवन में पढ़ने योग्य
या न पढ़ने योग्य साहित्य, कथा, कहानी
आदि अनेक पढ़े होंगे, लेकिन जीवन का सार नहीं
निकाल पाये। यदि तुम अपने जीवन के उपन्यास को
ही शास्त्र बना लेते तो आज सुखमय
जीवन की प्राप्ति कर लेते।

(44)

केवलज्ञान की चर्चा करने से चारित्र
पैदा नहीं होता, उसकी श्रद्धा करने
से चरित्र पैदा होता है।

(45)

अपने दुःखों के लिए दूसरे को दोषी ठहराने वाला
अज्ञानी है।

(46)

जीवन में सहजता व सहनशीलता ही सफलता
दिलाती है। सहो और सहज बनो।

(47)

सहज व्यक्ति सरल व तनाव मुक्त
होते हैं, इनमें अहं व दीनता नहीं होती।

(48)

आत्मविश्वासी संघर्षों का डटकर मुकाबला
करता है, सफल होता है अतः
आत्मविश्वासी बनो।

(49)

सादगी में जीने वाला व्यक्ति
प्रकृति के अपरिमित सौन्दर्य का
व आनन्द का भोक्ता होता है।

(50)

दिखावट, बनावट, सजावट, मिलावट
से जीवन में गिरावट व
कड़वाहट आती है।

(51)

महान पुरुष वह है जो गरिमावान
व महिमावान हो, वह कभी दीन
या अनाथ नहीं होता।

(52)

जिसकी इच्छा शक्ति जितनी प्रबल
होती है, वह अपने कार्य में उतना
शीघ्र सफल होता है।

(53)

एक कार्य में संकल्प की दृढ़ता तथा अनेक
कार्य एक साथ करने पर संकल्प में
शिथिलता आ जाती है।

(54)

हमारा धैर्य, साहस एवं विवेक
ही हमारा परम मित्र एवं
विश्वास सखा है।

(55)

"मेरे साथ कुछ भी बुरा नहीं हो सकता"
ये वाक्य अंतस में निर्भीकता
का उत्पादक होता है।

(56)

जो शत्रु से डर जाता है वह पराजित
हो जाता है तथा निर्भीक, विजय
प्राप्त कर लेता है।

(57)

जिसमें निर्भयता का गुण होता
है उसे विजय श्री को प्राप्त करने
से कोई रोक नहीं सकता।

(58)

जो कुछ शुभ कार्य करना है,
उसे आज ही कर लें, कल का
कोई भरोसा नहीं है।

(59)

मेरा संकल्प है कितने ही विघ्न
आयें, किन्तु मैं शुभ कार्यों के करने
से कभी विचलित न होऊँगा।

(60)

सपनों को साकार रूप दिया जाता है,
यदि हम अपने दृष्टिकोण को बदलने
के लिए तैयार हो जायें तो।

(61)

देह के प्रति आसक्ति रखने वाला
कभी महापुरुष नहीं हो सकता,
अतः आसक्ति छोड़ो।

(62)

अपने गुरु की कसौटी पर खरे उतरो
तो दीपक से ज्योतिर्मान रहोगे, गुरु की
दृष्टि से गिरने वाला राख ही रह जाता है।

(63)

भोग में डूबा हुआ व्यक्ति दुर्गति
का पात्र बन जाता है, अतः
भोगों से विरक्त रहो।

(64)

समस्त शरीरों की अपेक्षा से मनुष्य
का शरीर दुर्लभ है, अतः इसकी
सार्थकता समझो।

(65)

जो मानव राम की तरह सत्य
एवं लक्ष्मण की तरह समर्पित होता है,
वही जीवन का यज्ञ पूर्ण कर पाता है।

(66)

आपकी लोभ प्रवृत्ति मात्र आपके लिए ही नहीं वरन् अनेक प्राणियों के लिए भी दु:खों की हेतु है।

(67)

जो अज्ञान के अंधेर में मिथ्यात्व के पिशाच कर्मों के जाल एवं असंयम के अरण्य से बचने के लिए आतुर है, उस सम्यक् दृष्टि को विषय भोग एवं भौतिक सम्पत्ति नहीं लुभा सकती।

(68)

धर्म तो आत्मा का स्वभाव है, पर द्रव्यों में आत्म वुद्धि छोड़कर अपने ज्ञाता दृष्टा स्वरूप का श्रद्धान, ज्ञान, आचरण करना ही धर्म पथ है।

(69)

दीर्घ संसारी जीव का पूर्वबद्ध पाप कर्म के उदय से धर्म कार्य में मन नहीं लगता।

(70)

निश्चय धर्म है, बिना व्यवहार धर्म के निश्चय धर्म की प्राप्ति असंभव है।

(71)

जिस मूढ़, व्यक्ति ने व्यवहार धर्म
की उपेक्षा की है, उसने जिनदेव द्वारा प्रणीत
निर्मल जीव मात्र के हितकारी जिनशासन
का ही विघात किया है, तथा निश्चय की उपेक्षा
करने वाला अपनी आत्मा को धोखा दे रहा है।

(72)

मेरी ज्ञाता-दृष्टा स्वभावी आत्मा, अनादि
से है, अनंत काल तक रहेगी किन्तु बिना
गुरु के निमित्त के उसे जानना वैसे ही
असम्भव है, जैसे दीपक के बिना अंधेरे
में सुई में धागा डालना।

(73)

संसार की समस्त अपवित्रता, शरीर
के स्पर्श से ही निर्मित होती है।

(74)

जीवन के अपने ही किये गये
पाप कर्म उसके पतन का
कारण बन जाते हैं।

(75)

राग-द्वेष व मोह (मिथ्यात्व+कषाय)
बंध के ही कारण है, इनके रहते भव
भ्रमण छूट नही सकता।

(76)

जिसने सकल हिंसा का नव कोटि से
त्याग किया है, तथा अंतरंग में
राग-द्वेषादि विकारी भावों से बचने में
प्रयत्नशील है ऐसा पूर्ण अहिंसक जीव
निकट भविष्य में परमात्मा बनेगा।

(77)

धर्म की रक्षा हेतु शरीर का
परित्याग करना सल्लेखना है।

(78)

यदि वर्तमान काल के कार्यों की हम समीक्षा
करें तो पाप से बच सकते है।

(79)

शरीर का एक परमाणु भी मेरा नहीं है,
किन्तु शरीर में विद्यमान अशरीरी आत्मा ही मेरा
है, जिसे आज तक मैं भूल रहा हूँ।

(80)

संसार में विद्यमान अज्ञान रूपी अंधकार
को स्याद्वाद रूपी परमागम के प्रकाश
से अथवा भक्ति, पूजा, दान से या ज्ञान,
ध्यान, तप से दूर करके स्व पर के स्वरूप
का प्रकाश करना ही धर्म प्रभावना है।

(81)
समाधि मरण समस्त मरणों
का मरण करने का साधन है।

(82)
बाल-बाल मरण तो आबाल वृद्ध
सभी अज्ञानी करते ही हैं, तुम पूर्व
आत्मज्ञानी बन पण्डित मरण
करने का पुरुषार्थ करो।

(83)
मृत्यु आने पर तुम्हारे साथ यहाँ का धन
वैभव कुछ भी साथ नहीं जायेगा, मात्र
तुम्हारे द्वारा अर्जित पुण्य-पाप ही
साथ में जायेगा।

(84)
निधत्ति और निकाचित आदि से
युक्त जो कर्म हमारे उदय में आकर हमें
अशुभ फल देने वाले हैं उन्हें भक्ति तप व त्याग
के बिना कोई भी टालने में समर्थ नहीं है।

(85)
मल निर्मित वस्तु शुद्ध नहीं हो सकती
वैसे ही शरीर शुद्ध नहीं होगा।

(86)

जो पद, पैसा, प्रतिष्ठा के चक्कर में
पड़ा है वह निरापद स्व पद को नहीं
पा सकता, पद का मद और मद सहित
पद दोनों ही खतरनाक है।

(87)

जो अव्रती होते हुए भी सम्यग्दृष्टि व
देशव्रती से पूजा-सम्मान चाहता है, अपने
को संयमी वत् पूज्य मानता है, वह मिथ्यादृष्टि
है स्व और पर को ठगने वाला है।

(88)

पंचपरमेष्ठी भगवान् की शरण को ग्रहण
करके अपने अजर अमर शाश्वत, ज्ञाता-दृष्टा
स्वरूप को पाने का प्रयास करो, अन्यथा इस
मनुष्य भव के निकल जाने पर उसकी
प्राप्ति असम्भव ही है।

(89)

इन्द्रिय विषय व लक्ष्मी के समान
ठगिया (आत्मा को ठगने वाला)
कोई नहीं है।

(90)

प्रत्येक जीव को अपने शुभाशुभ
कर्म का फल भोगना ही पड़ता है।

(91)

जिन शासन रूपी समुद्र में निश्चय के रत्न
उन्हें ही प्राप्त होते हैं, जो व्यवहार रत्नत्रय रूपी
समुद्र में डुबकी लगाते है। किनारे पर बैठने वाले
सागर तल के निश्चय रत्नत्रय धर्म के रत्न
नहीं पा सकते।

(92)

मिथ्यादृष्टि जीव की समग्र चेष्टायें (चाहे वे भौतिक
सुख-दुःख के कारण हों या न हों किन्तु वे सभी)
भववर्द्धक ही होती है।

(93)

आत्मानुभूति में निमग्न तपस्वी
कलिकाल के भगवान है।

(94)

हाड़ी में पकते हुए चावल गतिमान रहते है
वैसे ही कर्म की अग्नि से संतापित
जीव संसार में (चारों गतियों में)
परिभ्रमण करते है।

(95)

संसार के स्वरूप का यथार्थ चिन्तन करने
से संसार भ्रमण से भय लगता है तथा शरीर
व भोगों का यथार्थ चिंतन करने से शरीर
भोग व पर पदार्थों के प्रति राग-भाव
कम होने लगता है।

(96)

अनन्त पर्यायें दु:ख की भोगने पर एक पर्याय इन्द्रिय जनित सुख भोगने को मिलती है, तथा अनंत इन्द्रिय जनित सुख भोगने के बाद एक पर्याय अतीन्द्रिय (अनंत) सुख भोगने को मिलती है।

(97)

पूर्व पुण्य से प्राप्त मनुष्य पर्याय को पाकर आप पापों के आस्रव का कार्य मत करो।

(98)

अरिहंतों की दिव्य ध्वनि से जगत का कल्याण होता है; अत: वचन कृत उपकार के कारण वे सिद्धों से पूर्व पूज्य हैं।

(99)

इस संसार में दु:ख तो स्वयंभूरमण समुद्र के जल के समान असीम है तथा भौतिक सुख (सुखाभास) वालाग्र पर रखी एक बूँद के समान है।

(100)

बगीचे में रहकर फल न खाने वाला- पुष्पवाटिका में रहकर भी पुष्पों की सुगंधि से अपरिचित उसी प्रकार हास्य का पात्र होता है जैसे साधु संगति से (में) रहने वाला भोगी।

(101)
करोड़ों स्वर्ण मुद्रा के बदले में
मनुष्य भव का एक सैकेण्ड का
समय भी नहीं मिल सकता।

(102)
अन्याय, अत्याचार, अभक्ष्य, अनीति
अज्ञान व अतत्त्व दृष्टि का जो त्यागी
होता है वही सम्यग्दृष्टि हो सकता है।

(103)
जैसे वक्र म्यान में सरल कृपाण
नहीं रखा जा सकता, उसी प्रकार
वक्र मन में जिनेन्द्र प्रणीत सरल
(आर्जव) धर्म प्रविष्ट नहीं हो पाता।

(104)
यदि अहिंसादि पाँच अणुव्रतों का पालन करते
हुए भी आप की आजीविका (पेट भर जाये)
चल सकती हो, तो कभी पापों का
सहारा मत लेना।

(105)
हजारों बार प्रभु चरणों में बैठकर भक्ति
करने पर भी एक बार मनुष्य भव का
मिल जाना नियामक नहीं है।

(106)

गुरु के उपदेश को भाव सहित वे
ही श्रवण कर सकते हैं जिनका भव
भ्रमण अत्यल्प रह गया है।

(107)

जिनवाणी का स्वाध्याय करने वाला,
गुरुपदेश सुनने व प्रभु पूजन करने
वाला गर अन्याय करता है तो वह
अपनी आत्मा को ठगने वाला सबसे
बड़ा घातक जानवर है।

(108)

यदि हिंसादि का त्याग करके श्वेत कर्म से
आप अपने परिवार का भरण-पोषण कर
सकते हो तो करो, पाप करके दुर्गति के
पात्र मत बनो।

(109)

भोजनासक्ति को कम करने
के लिए ऊनोदर तप करना चाहिए।

(110)

अज्ञानी (विषयानुरागी) का गुरु
बनने की अपेक्षा आत्मज्ञानी संयमी का
शिष्य बनना कोटिगुना बेहतर है।

(111)

न्यायमार्ग से परिग्रह संचय करने वाला
दुर्गति का पात्र नहीं, क्योंकि वह परिग्रह
आसक्त ही नहीं होता और ज्यादा
कमायेगा ही नहीं।

(112)

जैसे पाषाण जल में पड़ा हो, तब भी
वह मुलायम नहीं होता वैसे ही कठोर
हृदय मनुष्य गुरु उपदेश सुनकर
भी वैरागी नहीं होता।

(113)

जो व्रती महाव्रती होकर भी
अव्रती की पूजा करता है, वह
मोक्षमार्ग से बहिर्भूत है।

(114)

सुख की प्राप्ति सर्व पापों के
त्याग से होती है, किन्तु मिथ्यादृष्टि जीव
तन, धन, स्वजन, परिजन व पुरजनों
की वृद्धि को सुख मानता है।

(115)
विवाह करने पर पहले वाह-वाह,
फिर आह-आह निकलती है, कालान्तर
में दाह-दाह को पाकर व्यक्ति तबाह और
गुमराह हो जाता है।

(116)
नास्तिक की भी कभी उपेक्षा
मत करो, वह भी कभी आस्था के
शिखर पर आस्तिकता की ध्वजा
फहरा सकता है।

(117)
गलत धारणा वाला नास्तिक है,
सत्य की राह पर चलने वाला
आस्तिक है।

(118)
समय पर न चूकने वाली
वर्षा से ही पृथ्वी अमृतोपम
खाद्यान्न व भोज्य पदार्थों
को धारण किये हुए है।

(119)
कालाणु असंख्यात होते हुए भी कभी
आपस में मिलकर एक नहीं होता,
उसी प्रकार एक जीव दूसरे जीव
के साथ मिलकर एक नहीं हो सकता।

(120)

आत्मा का जितना हित आगम
की आज्ञा मानने से होता है, उतना
अन्य किसी के करने से नहीं होता।

(121)

इस अमूल्य मनुष्य भव को अर्थ
में लगाकर क्यों अनर्थ व व्यर्थ बना
रहे हो, परमार्थ में लगाकर सर्वार्थ
सिद्धि कर सार्थक कर लो न।

(122)

जिनदेव, जिनवाणी, जिनधर्म, जिनगुरु
व आत्म कल्याण में रुचि न होना,
अनुराग नहीं होना, मिथ्यात्व का ही प्रभाव है।

(123)

समय पर काम लेने वाला
व्यक्ति ही समयसार का अभ्यासी
है, सदैव समय व व्यक्ति को देखकर
व्यवहार करो।

(124)

कदाग्रह, विषयासक्ति, पापबुद्धि,
कषायपुष्टि, भोगानुराग नियम से
दुःख के ही कारण होते है।

(125)

जो वचनों से अपनी झूठी प्रशंसा
करता है, वह नीच गोत्र का बन्धक होता है।

(126)

सम्यक्त्व सब रत्नों में महारत्न है, सब
योगों में उत्तम योग है, सब ऋद्धियों में
महाऋद्धि है अधिक क्या कहें? सम्यक्त्व ही
समस्त ऋद्धि, सुख, शांति व मोक्षमार्ग
का प्रथम कण है।

(127)

इस दुर्लभतम मनुष्य पर्याय को प्राप्त
करके पंच परमेष्ठी की शरण ग्रहण कर
आत्म स्वरूप में लीनता हेतु संयम
को स्वीकार करो।

(128)

अपने चित्त को विकल्प रहित
करना ही तत्त्व की प्राप्ति करना है किन्तु
यह संयमी बने बिना असंभव है।

(129)

बहिरात्मपने का त्याग कर अन्तरात्मा
में लीन हो जाना ही परमात्मपने के
बीज की अवस्था को प्राप्त कर लेना है।

(130)

मैं ज्ञाता-दृष्टा अविनाशी, अखण्ड,
शाश्वत सुख रूप चिन्मय हूँ ऐसा
विचार किये बिना पर संबंध नहीं टूटेगा।

(131)

अर्हतादि पंचपरमेष्ठी की भावपूर्वक
यथार्थ वंदना करने वाले नियम से
सम्यग्दृष्टि होते हैं

(132)

मिथ्यात्व, अज्ञान व असंयम
का त्याग किये बिना रत्नत्रय
की प्राप्ति असंभव है।

(133)

मिथ्यात्वी के स्वाध्याय का, पूजन-
पाठ का प्रभाव, असभ्य भक्षाण एवं अन्याय
से नष्ट हो जाता है।

(134)

स्वकीय शुद्ध स्वभाव के अतिरिक्त
किंचित अणुमात्र भी मेरा नहीं है ऐसी
प्रवृत्ति करने वाला ही आकिंचन धर्म का
धारक होता है।

(135)

श्रद्धा युक्तविशुद्ध भाव से किया गया
परमात्मा का स्मरण मोह सागर में
डूबते लोगों के लिए सुदृढ़ नौका
के समान है।

(136)

विषय व विषयानुराग से रहित आत्मा
के स्वभाव में अनुरक्त रहना ही
पूर्ण ब्रह्मचर्य है।

(137)

जब मन में बुरे विचार पैदा हों तब आप
यह सोचें "मेरे अंदर मेरे शत्रु पैदा हो रहे
है", ये शत्रु मौका पाते ही मुझे पतित
और परास्त कर देंगे।

(138)

आत्म बोध, आत्मनिरीक्षण, आत्मसंयम
आत्मदर्शन, स्वात्मलीनता एवं आत्मसंतोष
समस्त आकुलता को नष्ट करने के
अचूक उपाय है।

(139)

जिस पुरुष के आशारूपी पिशाचिनी
नष्ट हो गई है उस पुरुष का शास्त्राध्ययन
चारित्र पालन, विवेक, तत्वों का चिंतन, त्रियोग
नियंत्रणादि सब सत्यार्थ व सार्थक है।

(140)

मानव की महत्ता धन संग्रह
से नहीं, गुण संग्रह से है।

(141)

आकृति से मनुष्य बनना उतना कठिन
नहीं है, जितना प्रकृति से मनुष्य
होना कठिन है।

(142)

आत्मीयता की भावना का जितना विस्तार
(विकास) करते जाओगे उतने ही उन्नति के पथ
पर अग्रसर हो जाओगे एवं जगत के प्रति तुम्हारी
विचार धारायें भी उदार हो जायेंगी।

(143)

किसी देश, नगर, राष्ट्र व ग्राम की
उन्नति तुच्छ विचार के बड़े व्यक्तियों
पर नहीं अपितु उदार विचार के छोटे
व्यक्तियों पर निर्धारित है।

(144)

उन्नति व लोकप्रियता का
मूलमंत्र आज्ञा और बलप्रयोग नहीं,
सेवा और प्रेम है।

(145)

वचन की अपेक्षा काय की संयम
युक्त क्रिया, प्राणी को धर्म का
वचन उपदेश देती है।

(146)

तुम एक साथ इन्द्रिय विषय व कषायों
के दास और आत्म विजेता जिनेन्द्र नही
बन सकते, दोनों मार्ग एक-दूसरे
के विपरीत हैं।

(147)

आत्मीयता का भाव सिर्फ अपनी शुद्ध
आत्मा से करो, तुम परमात्मा हो जाओगे,
दूसरे से आत्मीयता का भाव रखना स्वयं
को धोखा देना है।

(148)

भय और दण्ड से पाप कभी बंद
नही हो सकते, इसके लिए तो व्यक्ति की
मानसिकता को बदलना होगा।

(149)

जो संतोष धारण कर सकता है, वह
अपरिमित वैभव का आंनद भी
भोग सकता है।

(150)

तुम काम और वासना से पूर्ण मुक्त
हो जाओ और आत्मा को आत्मा में
लीन कर दो फिर देखो, तुम्हें कितना
आनंद आयेगा।

(151)

स्त्री नहीं बांधती तुम्हारी वासना बांधती
है, वस्तु की प्राप्ति होने पर भी तुम मुक्त
रह सकते हो, किन्तु तुम वासना करके
उसमें बंध जाते हो।

(152)

स्वस्थ चित्त, व्यक्ति की सहज
क्रिया है, मुखौटा नहीं है।

(153)

जब तुम दोष देखने के लिए आतुर होने
लगो तब तुम अपनी समीक्षा प्रारम्भ
कर दिया करो।

(154)

यदि तुम अपने शरीर की भाव
भंगिमा को बदलना चाहते हो तो भोजन
के समय भाव और भंगिमा आदि आदतों
को। क्रियाओं को बदलो।

(155)

दु:ख-सुख हमारी मानसिकता में है, यदि
हम अपने आपको दु:खी मानते चले जायेंगे
तो दु:खी हो जायेंगे।

(156)

बुद्धिपूर्वक वस्तु को ग्रहण करने
वाला नि:संदेह परिग्रही ही है।

(157)

संसार में सबसे ज्यादा परेशानियाँ
अहंकार के कारण जन्म लेती है, मार्दव
विनय स्वभाव वाले को परेशानियाँ
तोड़ नहीं सकती है।

(158)

सभी से शत्रुता करके व्यक्ति सदैव
चौकन्ना रहता है, उसे नष्ट करके स्वयं
भी प्रमादी होकर नष्ट हो जाता है।

(159)

सामायिक और प्रतिक्रणम से ही मन
में पवित्रता आती है। अत: पवित्र मन
वाले व्यक्ति को ही जीवंत व्यक्ति
कहना चाहिए।

(160)

जिस व्यक्ति को कांटा भी सुंदर लग
रहा है, तो समझो उसने कोई गहरी पीड़ा,
दर्द या वेदना का अनुभव किया है।

(161)

जीवन को सही ढंग से जीना है और
सफलता हाँसिल करनी है तो सबसे पहले
अपनी असलियत को पहचानो।

(162)

जब भी हम पूज्य पुरुषों के प्रसंग,
मनोयोग से एवं श्रद्धा से सुनते हैं तो
पूज्यता के संस्कारों का बीजारोपण हमारे
अंतरंग में प्रारंभ हो जाता है।

(163)

बड़ों को देखकर आगे बढ़ो, छोटों को
देखकर जियो, सदैव प्रतिकूलता सहने को
तैयार रहो, प्रसन्नता को प्राप्त करने का
यही उचित उपाय है।

(164)

मौन रहने की अपेक्षा ऐसे वचन
बोलना सार्थक होता है, जिनके माध्यम से
अशांत वातावरण को शांत बनाया
जा सके।

(165)

आशातीत विलम्ब के बाद अन्याय
ही न्याय सा नहीं लगता अपितु न्याय
भी अन्याय की तरह प्रतिभासित होता है।

(166)

तनाव से रहित तितली मंदिर के बजते
हुए घण्टे पर भी चैन से सो जाती है, किन्तु
तनाव युक्त मानव शांत महलों में भी
चैन से नहीं बैठ सकता।

(167)

सज्जन पुरुष के पास सत्ता, संपत्ति व
सौंदर्य न भी हो तब भी वह मात्र सत्य
से जनता का इतना हित कर सकता है
जितना कि सत्ता, संपत्ति व सौंदर्य
वाला नहीं।

(168)

हमने विषय कषाय का तो
सेवन कर लिया है, जिसका सेवन
नहीं किया अब उसका ही सेवन
करना है।

(169)

व्यक्ति के जो गुण घटना विशेष
से प्रकट होते हैं, वे गुण कभी घटना
विशेष पर लुप्त भी हो जाते है।

(170)

कीमत आत्मा की नहीं है, कीमती
बात तो यह है कि तुम्हारे पास आत्मा
के साथ साधन करने के लिए मनुष्य
का शरीर है।

(171)

भौतिक कार्यों का निर्णय बुद्धि
बल को तथा पारमार्थिक निर्णय हृदय
के द्वारा करना चाहिए।

(172)

अधिक गर्मी, मेघनिर्माण
एवं वर्षा का कारण होती है।

(173)

पाप का प्रसंग न मिलने पर भी यदि
हमारे मन में पाप विचार आ जाते हैं और
धर्म क्षेत्र पर पुण्य निमित्त मिलने पर भी धर्म के
या पुण्य के भाव मन में नहीं आते हैं तो समझ
लेना चाहिए कि हमारा भविष्य बहुत खतरनाक है।

(174)

अनुभव के लिए उस वस्तु व क्षेत्र
की इतनी समीपता की अनिवार्यता
नहीं, जितनी कि भावों की समीपता की
अनिवार्यता है।

(175)

दुर्जन के हाथ आई सत्ता, संपत्ति
व सौंदर्य जनता के लिए अभिशाप स्वरूप
है क्योंकि दुर्जन, बिना सत्ता, संपत्ति के भी
इतना अहित कर सकता है जिसे सौ सज्जन भी
दूर नहीं कर सकते।

(176)

व्यक्ति के जीवन में किसी भी
प्रकार का असंयम हो और व्यक्ति
दु:खी न रहे, यह असंभव ही है; चाहो
तो विचार कर लेना।

(177)

अपेक्षा की जहाँ भी उपेक्षा
होती है, वहाँ नियम से दु:ख
होगा।

(178)

हम मात्र अतीत की भूलों के
लिए पश्चाताप ही न करते रहें साथ में
उन्हें भविष्य में न दोहराने का संकल्प भी कर
लें, तभी पश्चाताप सार्थक होगा।

(179)

यदि दुनियाँ में धन ही श्रेष्ठ होता
तो मंदिरों में भगवान की नहीं धनवानों
की मूर्तियाँ विराजमान होती, फिर धनवान
फकीरों की शरण ग्रहण क्यों ग्रहण करते!

(180)

जीवन में धर्म का सौदा ही
एक ऐसा सौदा है, जिसमें घाटा नहीं लगता
एक लगाने पर लाख मिलते हैं।

(181)

धर्म को दबाव से नहीं,
स्वभाव से पैदा करो।

(182)

तुम यदि किसी की दृष्टि में अच्छे
बन जाना चाहते हो तो एक बात कहूँ, तुम
खुद और खुदा की दृष्टि में अच्छे बन जाओ,
दुनियाँ तुम्हें नियम से अच्छा कहेगी।

(183)

यदि हम प्रभु परमात्मा को अपना सर्वस्व
मानते हैं, उनके लिए अपना सर्वस्व समर्पण
करना चाहते हैं, तब क्या हमें उनकी सर्व बातें
नहीं माननी चाहिए?

(184)

जीवंत व्यक्ति वही है,
जिसकी चेतना ऊर्ध्वमुखी
हो गयी है।

(185)
जो विरला है, सयाना है,
मनीषी है, वही धर्म का संग्रह
करता है।

(186)
जब तक नमकीन खाने में अच्छा
लग रहा है तब तक मीठा खाने की इच्छा भी
नहीं होती, उसी प्रकार जब तक आप को पाप में आनंद
आ रहा है, तब तक पुण्य में मन लगे भी तो कैसे?

(187)
संसार में जितनी
अच्छाई है, वह सभी धर्म है।

(188)
जब भी दूसरों पर दया की
जाती है, स्वयं के ऊपर दया
सहज ही हो जाती है।

(189)

ईर्ष्यालू व्यक्ति कदाचित् अपनी निन्दा
को सुन भी सकता है और उसे सहन भी
कर लेगा, किन्तु वह दूसरों की प्रशंसा न सुन
सकेगा और न ही उसे पचा सकेगा।

(190)

हमें अंदर से सहज और बाहर
से निर्भय होना चाहिये, जिससे हम स्व-पर की
रक्षा कर सकें।

(191)

आत्मशांति का यथार्थ व पूर्ण
अनुभव मौन रहने पर ही
संभव है।

(192)

यदि अंजुलि में या कलश में छोटा सा
छिद्र भी हो तो कितना भी पानी भरो वह
समग्र पानी निकल ही जाता है, उसी प्रकार
मन में छोटी भी शंका हो तो धर्मानुष्ठान का
समग्र फल नहीं मिल पाता।

(193)

अन्याय और अनीति के साधनों से तुम कदाचित्
धन का संग्रह तो कर सकते हो, किन्तु उसका सम्यक्
भोग व उपभोग नहीं कर सकोगे और न ही
उस धन से सुख-शांति की अनुभूति कर सकोगे।

(194)

अच्छे-भले आदमी पर्वों को
आतिशबाजी करके नहीं मनाते।

(195)

प्रतिकूल परिस्थितियों से,
स्वाध्याय (ज्ञानार्जन) से वैराग्य व
संयम साधना पुष्ट होती है।

(196)

जब शक्कर का डिब्बा हाथ में लेने
मात्र से मुख मीठा नहीं हो सकता, तब
समयसार जैसे महान ग्रन्थों को हाथ में लेने
से आत्मा की अनुभूति कैसे संभव है?

(197)

"लोग क्या कहेंगे" इस बात को जीवन
में धारण कर लो और प्रत्येक कार्य करने के पूर्व
इस वाक्य का चिन्तन करते रहोगे तो तुम स्वतः ही
कम से कम ५० प्रतिशत अपराध व पापों
मुक्त हो जाओगे।

(198)

तुम्हारा कर्तव्य जहाँ पर है,
वहीं पर पालन करो, छोड़ो मत,
वरना पिटोगे।

(199)

मर्यादा का उल्लंघन न करने
वाला ही जगत में सर्वोच्च
स्थान पाता है।

(200)

दुष्ट व्यक्ति कुत्ते की तरह अपना भोजन
या अन्य काम छोड़कर लड़ने का मौका पाते ही
निकलकर बाहर आ जाता है, किन्तु सज्जन
ऐसा कदापि नहीं करते। अपने आपको भी
देख लें कि कैसा करते हैं हम।

(201)

मर्यादा का उल्लंघन न करने
वाला ही जगत में सर्वोच्च स्थान
पाता है।

(202)

जब हम प्रभु को याद करते हैं, तब-तब हमें प्रभु की दया अवश्य मिलती है, यदि दया नहीं मिली होती तो हमारे परिणाम विशुद्ध कैसे होते?

(203)

सत्य के मार्ग में आरुढ़ होकर यह मत देखो कि कौन तुम्हारे साथ है, कौन तुम्हारे विरुद्ध।

(204)

हम जिसका चिंतन करते हैं, उसके गुण हममें आते हैं।

गाय को घास खिलाने से ग्रह पीड़ा (कष्ट) दूर होती है।

(205)

हमारा चेहरा हार्दिक विचारों की अनुक्रमणिका है तथा क्रिया कलाप और प्रवृत्तियाँ आइने में झलकने वाले प्रतिबिम्ब। हमारी प्रभु के प्रति जैसी भक्ति होती है, हमारे विचार भी वैसे ही बनते है।

(206)

तुम्हारे पास मन, वचन, तन व धन आदि जो साधन उपलब्ध है उनका सदुपयोग करके तुम सुखी हो सकते हो, दुरुपयोग करके दु:खी। अब आपकी इच्छा है, आप जैसा चाहो, वैसा करो।

(207)

राजनीति में भी आध्यात्मिकता का प्रवेश होना चाहिए।

(208)

जिस प्रकार ऊसर (बंजर) भूमि में कृषि करना, बालू को पेलना, जल का मंथन करना, मूर्खों से शिक्षा प्राप्त करना, असंयमासक्तों से वैराग्य का सुनना, व्यर्थ है उसी प्रकार युवती से राग करना है।

(209)

यदि हम किडनी से रक्त की शुद्धि न करें तो अशुद्ध रक्त हृदय घात कर मौत से मिला देगा, इसी तरह दान देकर हम वित्त की शुद्धि न करें तो पाप कर्म हमें दुर्गति रूपी सौत के जाल में फंसा देगा, ये कभी आपने सोचा है क्या?

(210)

असंभव को संभव बनाती है,
सच्ची श्रद्धा से युक्त भक्ति।

(211)

स्वस्ति उसके जीवन में होती
है, जो स्वास्तिक हो।

(212)

स्त्री जाति (माँ, बहन, पुत्री, पत्नी इत्यादि) ये शरीर से अवश्य कोमल होती है, किन्तु सहनशीलता व समर्पण के संबंध में पुरुष के पराक्रम व कठोरता से कई गुना बहुत आगे है।

(213)

अपनी गलती की दूसरों से क्षमा माँगना जितना सरल है, दूसरों की गलती को क्षमा करना उतना सरल नही है ना! क्षमा माँगना वीरता का काम है, तो क्षमा करना महावीरता और महाधीरता का।

(214)
तृष्णा का पेट कभी नहीं भरता
अत: तृष्णा को लघंन कराओ।

(215)
जो प्रत्येक होनी को सही मानता
है वह किसी भी अनहोनी को
गलत नहीं कहेगा।

(216)
पतंग की डोरी जब तक उसके स्वामी के हाथ में
है, तब तक ही उसकी सुरक्षा है, उन्नति है,
उसी प्रकार अपने जीवन की डोरी जब
तक अपने गुरु आदि के
हाथ में होती है तब तक ही
अपनी सुरक्षा, विकास
व उन्नति है।

(217)
दु:ख व संकटों की अति ही दु:ख
व संकटों की अति का कारण है, दु:खों
का अंत ही सच्चे सुख का प्रारंभ है।

(218)

हिंसा की हिंसा तथा अहिंसा की
अहिंसा आवश्यक है, किन्तु कभी
भूल कर भी हिंसक अहिंसक की
हिंसा मत करो।

(219)

आप सस्ता और सुन्दर चाहते हैं, किन्तु
अच्छा, कम सुन्दर और महँगा
नहीं, यदि आप अपने समीकरण नहीं
बदलोगे तो दु:खी हो जाओगे।

(220)

जो विजेता होते हैं, वे काम
करने की आदत बना लेते हैं, पराजित
होने वाले व्यक्ति ऐसा नहीं करते।

(221)

घमण्डी और उद्दण्डी जनों की
उद्दण्डता को दूर करने के लिए दण्ड
और दण्ड संहिता की परमावश्यकता होती है।

(222)

हमारे द्वारा दूसरों के लिए किये गये उपकार
व नेक कार्यों का फल भी हमें मिलेगा, हाँ
यह भी संभव है कि फल मिलने में देरी हो जाये।

(223)

जो व्यक्ति अपने कर्तव्यों के
पालन करने में शिथिल होते है, उन्हें
ही दूसरों से ज्यादा शिकायत होती है।

(224)

आत्म विश्वास की प्रबलता एवं
महत्वाकांक्षा की तीव्रता किसी भी
कार्य में सफलता दिलाने वाली
प्रेरिका है।

(225)

अच्छे कार्यों को भी यदि तुम बुरा मानकर कर
रहे हो तब भी इतनी हानि नहीं, जितना कि बुरे
कार्यों को हितकर और अच्छे मानकर करना।

(226)

जवानी के नशे में, बुद्धि के अहंकार से
युक्त हो, होश से रहित दशा में जो-जो कार्य
किये है उनका फल भोगने के लिये ४० वर्ष का जीवन
भी कम ही होता है।

(227)

कई बार हम अपने अनुकूल परिस्थिति बनाना चाहते हैं, जब तक परिस्थिति हमारे अनुकूल नहीं बने तब तक हमे परिस्थिति के अनुकूल नहीं होना चाहिए।

(228)

अच्छे विचारों का संग्रह एवं शुभ कार्यों का सम्पादन तुम्हें सम्पन्न बनायेगा।

(229)

साहस, विवेक, धर्म एकाग्रता और उद्यमशीलता जीवन की रहस्यमयी विद्यायें है।

(230)

आज संसार में जितनी भी अच्छाई विद्यमान है, उन सभी का आधार यदि तुम बहुत गहराई में जा कर देखोगे तो तुम कृतज्ञता को ही पाओगे।

(231)

शत्रुता का व्यवहार भले ही सामने वाले ने प्रारंभ किया हो किन्तु अपना और दूसरों का हित करने के वास्ते मित्रता की पहल तुम्हें ही प्रारंभ करना चाहिए।

(232)

पानी में पत्थर फेंकने से लहर उत्पन्न
होती है, कटु शब्दों का प्रहार करने से मन
आंदोलित हो जाता है, चित्त की शांति
नष्ट हो जाती है।

(233)

सज्जन पुरुष उपकार करके भूल
जाते हैं, दुर्जन, दूसरों की बुराईयों को और,
अपने द्वारा किये उपकार को सदैव याद रखते हैं।

(234)

हम दूसरों के प्रति द्वेष का बीज बोकर
स्वयं ही द्वेष के पात्र बन जाते हैं तथा दूसरों
को धिक्कारने से खुद की जिन्दगी को धिक्कारने के
योग्य बना लेते हैं।

(235)

सज्जन से मित्रता न कर यदि उनसे
दुश्मनी भी की, तब भी वे तुम्हारा उतना
अहित नहीं कर सकते, जितना अहित दुर्जनों
की मित्रता से होता है।

(236)

हमारी वृत्ति, प्रवृत्ति व प्रकृति को
प्रभु की स्वीकृति मिल जाये तो हमारा
जीवन सफल और सार्थक हो जाये।

(237)

यदि स्वयं तुम अपेक्षा की
उपेक्षा कर दोगे, तो नियम से
सुखी हो जाओगे।

(238)

एक छोटी सी चिंगारी सारे जंगल को
भस्म कर सकती है, उसी प्रकार छोटी सी कटु
बात जीवन में महाभारत जैसे भयानक युद्ध का
कारण भी बन सकती है।

(239)

स्वात्मा का हित करने वाला परहित
करता ही है, परहित करने वाला स्वहित भी
कर सकता है, किन्तु जो दूसरों का अहित करते
हैं वे नियम से अपना अहित करते ही हैं।

(240)

जिस प्राणी के अंदर कृतज्ञता
नाम का गुण पाया जाता है, वह
कभी मित्रों से अलग नहीं रहता।

(241)

महानुभाव! या तो देने की
प्रवृत्ति सीखो या लेने की
प्रवृत्ति सीखो।

(242)

वही प्रेम और वात्सल्य दीर्घजीवी
होते हैं जहाँ पर लेने की अपेक्षा देने
का भाव ज्यादा होता है।

(243)

कोई भी व्यक्ति अपने महल को पैसे के बल पर
बाह्य बस्तुओं से सजा सकता है, किन्तु जीवंतता
तो तभी आती है, जब उस महल में रहने वाले व्यक्ति
प्रेम वात्सल्य से युक्त होकर रहें।

(244)

प्रेम और वात्सल्य का धागा एक ऐसा
अद्भुत या चमत्कारिक होता है कि उसे अपनी
ओर खींचो तो वह टूट जाता है, दूसरी ओर खींचो
तो वृद्धि को प्राप्त होता है।

(245)

निंदा, चुगली व दूसरों की अहितकारक व
मीठी-मीठी बातें जब कर्ण द्वारों से अंतरंग में
जाती हैं तब वे पेट में जाने वाले जहर से भी
ज्यादा घातक हो जाती हैं।

(246)

संकीर्णता के बंधन में बंधी बुद्धि से
मनुष्य अपने हित के मार्ग को देखकर
तो प्रसन्न होता है किन्तु हित की बात करने
वालों से दूर ही भागता है।

(247)

परम विरक्ति ही इस मनुष्य
पर्याय का परम ध्येय है।

(248)

आज जो मनुष्य दु:खी है, वही
सुख को खोजने का अधिकारी है।

(249)

बुद्धि, प्राप्ति में संतुष्ट होती है, उसका आदि से अंतिम
तक लक्ष्य है पाना, पाना, पाना। जबकि हृदय,
देना ही देना जानता है, उसी में उसकी संतुष्टि व पूर्णता है।

(250)

प्रेम कभी अपने द्वारा किये उपकारों
का हिसाब नहीं रखता इसलिए दूसरे
के द्वारा किये गये उपकार उसकी
बुद्धि से परे होते है।

(251)
बिना सामायिक किये आत्म
तत्त्व की प्राप्ति नहीं हो सकती।

(252)
स्वस्थचित्त व्यक्ति परमात्मा के द्वार
को प्राप्त करने का अधिकारी है।

(253)
तन के लिए दुनियाँ में हजारों प्रकार
के लाखों कारागार है, किन्तु मन के लिए
कारागार है राग/ममत्व। और मन को बंधन में डालने
वाली बेड़ियाँ है गलत धारणा।

(254)
पुरुष यदि पराक्रम में सुमेरु
पर्वत की चोटी है तो स्त्री समर्पण के अर्थ में समुद्र का
तल, पुरुष यदि दुष्टता में आकाश की ऊँचाई है तो
स्त्री सहनशीलता के क्षेत्र में पृथ्वी की तरह मानी गयी है।

(255)
संसार के अधिकांश प्राणी लौकिक
व पारमार्थिक ज्ञानी, साहित्य के अध्येता
होकर भी ज्ञान के बुद्धि के दुरुपयोग करने से
दुःखी देखे जाते है जबकि मूर्ख अथवा उत्पज्ञानी सुखी
व संतुष्ट दिखायी देते हैं।

(256)

केले के वृक्ष को या प्याज की
गाँठ को कितना भी छीलते जाओ अंत में
कोई सार नहीं निकलता, उसी प्रकार विषय
भोगों में कोई सार नहीं है।

(257)

किसी के निमित्त से हमारे
जीवन में दु:ख तूफान ही क्यों न आया
हो फिर भी विवेकी पुरुष को कभी भी उसका
अपकार नहीं करना चाहिए, ये दु:ख अपने ही पूर्वकृत
कर्मो का फल है, यह सोचकर समताभाव रखना चाहिए।

(258)

पुष्प हँसकर काँटों की चुभन सहते है, पत्थर
शिल्पी की चोट सहकर मुस्कराता है, वृक्ष
सर्दी, गर्मी व बरसात के थपेड़े सहकर भी
विकासशील रहते है, फिर तुम मानव होकर भी
थोड़े से कष्टों से क्यों घबराते हो?

(259)

एक बार सामायिक करने
वाला व्यक्ति कभी भी नरक
नही जा सकता।

(260)

यदि अपने मन को गलत राहों पर
चलने से बचाना चाहते हो तो तुम उन
लोगों की संगति छोड़ दो, जो ग़लत राहों पर
चलते है तथा गलत राहों पर निगाह भी मत रखो।

(261)

हमारे जीवन की सुख-शांति वे नहीं छीनते
जो हमें धिक्कारते है या हमारी निंदा करते है किन्तु
जिनकी सलाह मानकर हम धिक्कार के योग्य बन जाते है
वे हमारे प्रशंसक ही हमारे दुश्मन होते हैं, वही हमारे जीवन
के सुख चमन में आग लगाते है, उनसे सावधान
रहने का पुरुषार्थ करो।

(262)

जिस कार्य पर तुम्हारा अधिकार
नहीं है, यदि वह काम करोगे तो
दु:खी हो जाओगे।

(263)

नर्म होकर धर्म करना, शिवशर्म
(मोक्ष सुख) का कारण है, गर्म (तीव्र कषाय
युक्त) होकर अधर्म करना भव कर्म का साधन
है, इसे अच्छी तरह से समझ लेना।

(264)

जो लोग दु:ख को दुश्मन और सुख
को मित्र बनाते हैं वे पुण्य को मित्र और
पाप को शत्रु क्यों नहीं मान लेते? कुसंस्कारों
को दुश्मन सुसंस्कारों को मित्र क्यों नहीं मान लेते?

(265)

बचपन में सरलता, यौवन में
नम्रता, बुढ़ापें में इच्छा निरोध ये
महान बनने के लक्षण है।

(266)

हम जैसी भावना भाते है, कालान्तर
में वैसे ही बन जाते है, अत: हमें अब
वैसी ही भावना भाना चाहिए जैसा
हम बनना चाहते हैं।

(267)

अहंकार का वृक्ष बबूल की तरह होता
है बाह्य में काँटो से युक्त (सभी के लिए
अप्रिय) अंदर से स्वाद रहित (अपने परिणामों को कलुषित
करने वाला) अत: इससे बच कर ही रहना।

(268)

जिसके (धन, तन, मन, वचन, प्राण आदि) छिन
जाने पर तुम दु:खी हो जाते हो, आज उसके सद्भाव
में सुख की अनुभूति क्यों नही कर लेते?

(269)

जीवन कभी समाप्त नहीं
होता इसमें जो कुछ पड़ाव आते हैं,
उन्हें ही हम मृत्यु कह देते है।

(270)

परिणामों को बिगाड़ने से मन:
समाधि तो बिगड़ती ही है, साथ में
परिणाम भी बिगड़ जाता है।

(271)

जो धन तुम्हें दो क्षण की शांति नहीं दे सकता
उस धन की अपेक्षा वह निर्धनता क्या
बुरी है? जिसे प्राप्त कर व्यक्ति कर्तव्यनिष्ठ व
धर्मात्मा बन जाये।

(272)

राग, सीमित है, संकीर्ण होता है, स्वार्थ
युक्त भी होता है, निश्छल प्रेम निस्सीम, उदार
एवं परमार्थ युक्त होता है।

(273)

मनुष्यों के लिए सफलता
का रहस्य सुअवसर का
लाभ लेना है।

(274)

सच्चे भक्त को तो कष्ट में भी
आनंद आता है, क्योंकि उसे उस
समय में भी अपने इष्ट की
याद आती है।

(275)

आज मानव को भौतिक धन की प्राप्ति हेतु
पुरुषार्थ करना इतना जरूरी नहीं है, जितना
कि भौतिक धन को प्राप्त कर उसका सदुपयोग
करने की प्रज्ञा पाना।

(276)

जैसे के साथ तैसा करने का अर्थ है, जैसा
मूल्य वैसी वस्तु, सामने वाले का जितना द्वेष
हमारा उतना ही अधिक प्रेम, जैसी अग्नि उतना
ही पानी, जैसा अपराध वैसा ही प्रायश्चित लेना।

(277)

बुद्धिमान व्यक्ति दूसरों को
आपत्ति में देखकर ही स्वंय
सावधान हो जाता है।

(278)

किसी के गुणों का स्मरण करना
उतना कठिन नहीं जितना उसके उपकार
स्मरण कर कृतज्ञता ज्ञापित करना होता है।

(279)

तन के लिए दुनियां में हजारों प्रकार के लाखों कारागार हैं, किन्तु मन के लिए कारागार है राग/ममत्व। और मन को बंधन में डालने वाली बेड़ियां हैं गलत धारणा।

(280)

जिस प्रकार उबलते जल में अपना चेहरा नहीं देख सकते उसी प्रकार कषाय के तीव्रोदय में आत्मदर्शन असंभव है।

(281)

दुश्मनों के बीच में भी प्रसन्नता से साक्षात्कार किया जा सकता है, इसके विपरीत अहंकार और स्वार्थवृत्ति दो ऐसे दुर्गण हैं, जिनसे मित्र भी शत्रु बन जाते हैं, अपना घर भी नरक जैसा प्रतिभासित होता है।

(282)

अपने बृद्ध माता-पिता (सास-श्वसुर) की कभी अपेक्षा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि बूढ़ा पेड़ भी घर में छाया बढ़ाता ही है, अब फल न भी दे तो क्या पूर्व में तो बहुत फल दिये थे न।

(283)

उपसर्ग को सहन कर भी जो अपना धैर्य व समता नहीं छोड़ता,मानो उल्टा उपसर्ग कर देता है, अर्थात उपसर्ग व उपसर्ग करने वाले, उपसर्ग विजेता को प्रसन्नचित्त देखकर पराजित हुए की तरह भाग

(284)

हमारा व्यवहार, कुएं के निकट खड़े होकर बोली गई आवाज की तरह होता है, हम जैसा व्यवहार करते हैं, उसका प्रतिफल भी हमें वैसा ही मिलता है।

(285)

मायाचारी को सरलता से ही पकड़ना संभव है संतोषवृत्ति के सामने लोभ स्वत: ही नतमस्तक हो जाता है, यह बात सदैव ध्यान रखना चाहिए।

(286)

विवेक और सहिष्णुता में दो ऐसे मानवीय गुण है, जिनसे युद्ध की विभीषिका के समय भी सुख की अनुभति की जा सकती है।

(287)

संयुक्त परिवार, आत्मीयजन, संगठन, समाज में सभी संबंध सत्य बोलने पर नहीं टिक सकते, किन्तु एक बात अवश्य है, अच्छ बोलने से संबंध सहजता से टूटते भी नहीं है।

(288)

राग सीमित है, संकीर्ण होता है, स्वार्थ युक्त भी होता है, निश्छल प्रेम निस्सीम, उदार एवं परमार्थ युक्त होता है।